Indian Journal of Modern Research and Reviews

This Journal is a member of the *'Committee on Publication Ethics'*

Online ISSN:2584-184X

REVIEW PAPER

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों की भाषा शैली और अभिव्यक्ति का अध्ययन : संवाद और सांस्कृतिक संदर्भ

Usha Kumari*[1], Dr. Ankit Narwa[2]

[1] Research Scholar, IEC University, Baddi, Himachal Pradesh, India

[2] Research Supervisor, IEC University, Himachal Pradesh, India

Corresponding Author: * Usha Kumari

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.17242363

सारांश

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों की भाषा और इसकी अभिव्यक्ति का अध्ययन आवश्यक है। इसमें संवाद का प्रयोग और सांस्कृतिक संदर्भ पर पूरा ध्यान देना चाहिए। नई सदी में साहित्य के बोलने का तरीका बदला है। लेखक अपनी बात सीधे और साफ तरीकों से कहता है। यह बदलाव साहित्य में जीवन की नई झलक लेकर आया है। संवाद और संस्कृति के मेल से कहानी में गहराई और समझ बढ़ती है। इससे वाचकों को कहानी से जुड़ने का अनुभव होता है। नई भाषा में भावनाओं का भी विस्तार हुआ है। यह अध्ययन हमें समझने में मदद करता है कि लेखक कैसे नई भाषा को प्रयोग करता है। *21*वीं सदी के उपन्यासों की भाषा और शैली का निरीक्षण किया गया है। इन नए दौर के उपन्यासों में शब्दों का प्रयोग आसान और स्पष्ट हो गया है। इन उपन्यासों में पारंपरिक प्रयोग कम होकर रोज़मर्रा की भाषा अधिक हो गई है। नई शैली में नए अनुभव और समझ पैदा होते हैं। इन सब बदलावों ने इन उपन्यासों को पढ़ने में आसानी और रुचि दोनों को बढ़ावा दिया है।

Manuscript Info.

✓ **ISSN No:** 2584- 184X
✓ **Received:** 06-08-2025
✓ **Accepted:** 18-08-2025
✓ **Published:** 28-09-2025
✓ **MRR:3(9):**2025;86-88
✓ **©2025, All Rights Reserved.**
✓ **Peer Review Process:** Yes
✓ **Plagiarism Checked:** Yes

How To Cite this Article

कुमारी उषा, नरवाल अंकित. इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों की भाषा शैली और अभिव्यक्ति का अध्ययन : संवाद और सांस्कृतिक संदर्भ. **Indian Journal of Modern Research Review. 2025;3(9):**86-88.

मूल शब्द: इक्कीसवीं सदी, भाषा शैली, अभिव्यक्ति, संवाद और संस्कृति

प्रस्तावना

आज हिन्दी भारत की राष्ट्रीय भाषा है। यह केवल राष्ट्रीय भाषा नहीं है, बल्कि देश की संपर्क भाषा भी है। संपर्क भाषा वह होती है जिसे लोग बातचीत के लिए इस्तेमाल करते हैं। जब विभिन्न प्रांतों के लोग मिलते हैं, तो वे अपनी मूल भाषा नहीं समझते। ऐसे में वे एक ऐसी भाषा का सहारा लेते हैं जिसमें उन्हें थोड़ा बहुत ज्ञान होता है। साधु, भिखारी, कंजर और पर्यटक अक्सर इसी स्थिति में हिन्दी बोलते हैं। देश की मुख्य भाषा वही होती है जिसे अधिकतर लोग जानते हैं और संवाद के लिए उसकी मदद लेते हैं। इस तरह से, हिन्दी ही भारत की राष्ट्रीय और संपर्क भाषा बन चुकी है। आज हर पढ़ा-लिखा भारतीय हिन्दी से परिचित है। हालांकि, तमिलनाडु में हिन्दी का विरोध होता है, पर वहाँ के लोग इसकी उपयोगिता को मानते हैं।

किसी भी विषय या तथ्य को परिभाषित करना हमेशा आसान नहीं होता। विशेषकर साहित्य की परिभाषा करना और भी मुश्किल है। अगर हम आधुनिक साहित्य, पत्रिकाओं और स्कूल की शिक्षा की बात करें, तो खड़ी बोली को हिंदी कहा जा सकता है। आमतौर पर, बोलियों और भाषाओं को उनके नाम से ही जाना जाता है, और उन्हें हिंदी नहीं कहा जाता। इस वजह से, यह उच्च हिंदी या परिष्कृत हिंदी मानी जाती

© 2025 Usha Kumari, Dr. Ankit Narwal. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

है। हालांकि, यह शहरी लोगों के लिए सामान्य हो सकती है, लेकिन यह आम लोगों की रोजमर्रा की भाषा नहीं है।
भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी में विभिन्न राज्यों जैसे बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, और हरियाणा के निवासियों की बोलचाल की भाषा भी शामिल होनी चाहिए। भाषा विज्ञान चाहे जो भी कहे, क्या हम हिंदी में चंदबरदाई, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, विहारी, और भूषण को अलग करना चाहेंगे?
हिंदी की परिभाषा व्यावहारिक, साहित्यिक और भाषाई दृष्टिकोण का पूरा ध्यान रखना चाहिए। जिस क्षेत्र में लोग हिंदी बोलते हैं, उसकी भाषा को भी हिंदी माना जाना चाहिए। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने हिंदी के व्यावहारिक और परिष्कृत रूपों पर जोर दिया है। उन्होंने कहा है कि हिंदी वही है जो भारत की राष्ट्रभाषा है, जिसमें अधिकतर पत्रिकाएँ और पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। यह सार्वजनिक भाषण के लिए उपयोग होती है, और इसमें सरकारी आदेश भी शामिल होते हैं। यह भाषा सभी विकसित शहरों में पाई जाती है और आज उत्तर भारत में शिक्षा का मुख्य माध्यम बन गई है।

उपन्यासों की भाषा संरचना का तुलनात्मक विश्लेषण

स्त्री स्वर के भाषायी पहलुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यह उन शब्दों और वाक्यों से संबंधित है, जिनमें महिलाओं की आवाज़ सुनाई देती है। पुरुष समाज ने प्राचीनकाल से ऐसे शब्दों का उपयोग किया है, जिन्हें बदलना आसान नहीं है। हालाँकि, आज की स्त्री रचनाकारों ने अपनी आत्मकथाओं, उपन्यासों और कहानियों के जरिए अपने अनुभवों को साझा किया है। भारतीय समाज शुरुआत से ही पुरुषप्रधान रहा है, जिससे सामाजिक चित्रण, प्रतीक और मुहावरे भी उसी दृष्टिकोण से बने हैं।
सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रसिद्ध कविता "झाँसी की रानी" की एक लोकप्रिय पंक्ति है - "खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।" यहाँ 'मर्दानी' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। यह एक महिला का बयान है, जो कहती है कि मर्दानी होना जरूरी है। इस शब्द का अर्थ है कि क्या यह स्त्री की आजादी का समर्थन करता है या इसके खिलाफ है। यह विचारणीय है कि क्या वीरता केवल पुरुषों के लिए है।
जब तक महिलाएँ 'मर्दानी' नहीं होंगी, वे वीर नहीं मानी जाएँगी। अपनी पहचान और अनुभव के साथ वीरता कैसे प्रकट कर सकती हैं? वीरता का जिक्र तब होता है जब पुरुष की पहचान की आवश्यकता होती है। यह एक मर्दवादी दृष्टिकोण है। यह स्पष्ट है कि लिखने वाली महिला है, और जो उस पर कविता लिखी जाती है, वह भी महिला है, लेकिन उपयोग की जाने वाली भाषा पुरुष प्रधान है। इसलिए, मर्दवादी भाषा से मुक्ति की बात सीधे स्त्री की मुक्ति से जुड़ी है।
चंद्रकला त्रिपाठी का कहना है कि पुरुष रचनाकार और आलोचक एक ओर महिला अधिकारों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का समर्थन करते हैं, वहीं दूसरी ओर वे अपनी रचनाओं में पुरुषवादी भाषा का उपयोग करते हैं। उन्होंने धूमिल की एक कविता का उदाहरण देकर इसे साफ किया है। लैंगिक भेद पर वर्जीनिया वुल्फ चिंतित हैं, और अपनी किताब "अपने कमरे" में वह इस मुद्दे को उठाती हैं कि उपन्यासकार के लिंग का इसके प्रभाव पर क्या असर होता है। वह कहती हैं कि उस समय की आलोचना का सामना करने के लिए बहुत प्रतिभा और ईमानदारी की आवश्यकता थी, खासकर एक पितृसत्तात्मक समाज में। केवल जेन ऑस्टेन और एमिली ब्रॉन्टे ही इस चुनौती को पूरा कर सकीं। उनका यह योगदान महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने अपने लेखन में महिला दृष्टिकोण को पेश किया, न कि पुरुषों के तरीके से। महिला रचनाकारों को अपने लिंग की सीमाओं को समझते हुए उत्कृष्टता की तलाश करनी चाहिए।
यह सच है कि पुरुषवादी शब्दों की भरपूरता वाक्यों की संरचना में दिखती है, जिससे महिला अभिव्यक्ति में जटिलताएं आती हैं। आज की स्त्री विमर्श हमारे साहित्य और समाज के लिए एक महत्वपूर्ण मोड़ है, जिसमें महिला रचनाकार अपनी आवाज को प्रकट कर रही हैं। यह तभी संभव है जब महिलाओं को अपनी भावनाएं और जरूरतें व्यक्त करने की स्वतंत्रता दी जाए। आज की महिला रचनाकारों की रचनाएं इस स्वतंत्रता और सम्पूर्णता का ज्वलंत उदाहरण हैं।
संस्कृति जैसे विषयों को अभिव्यक्त करने वाले बहुत कम शब्द हैं। महिलाओं के व्यक्तिगत अनुभवों को जिन शब्दों में व्यक्त किया गया है, वे उनके अपने नहीं हैं। पुरुषवादी भाषाशास्त्रियों ने महिलाओं के अर्थ को सीमित दृष्टिकोण से बनाया है, जिसमें उनकी वास्तविकता शामिल नहीं है। भाषाई रूपों के निर्माण में महिलाओं के अनुभवों को ध्यान में नहीं रखा गया है। इस कारण, महिलाएं जिस भाषा का उपयोग कर रही हैं, वह उनकी नहीं, बल्कि पुरुषों की भाषा है।
दलित साहित्य में जो जीवन का नजरिया प्रकट होता है, वह पहले के अनुभवों से अलग है। यह एक नया समाज और नया इंसान दिखाता है। दलित साहित्य का सच और भाषा भी अलग हैं। यह भाषा दलितों की साधारण और गंवार भाषा है, जो सामान्य व्याकरण के नियमों का पालन नहीं करती। कहा जाता है कि हर दस कोस पर भाषा बदलती है, लेकिन दलितों के मामले में यह फर्क कहीं ज्यादा है। एक ही गांव में, गांव की भाषा और अछूतों की भाषा में भी भेद दिखता है।
दलित लेखकों की भाषा में स्पष्टता दिखती है। उन्होंने अपनी लेखनी में प्रमाण भाषा के बजाय टोलियों की भाषा को अपनाया है। प्रमाण भाषा एक मानकीकरण की तरह होती है, जिसे दलित लेखकों ने स्वीकार नहीं किया। समाज में इस भाषा को शिष्ट लेखक की मान्यता मिली है, लेकिन यह मान्यता कई समस्याओं से भरी है। दलित लेखकों को प्रमाण भाषा के बजाय अपनी स्थानीय भाषा अधिक प्रिय है। असल में, प्रमाण भाषा में उनके अनुभवों के लिए कई शब्द नहीं मिलते। अपनी मातृभाषा में अपनी बात खुलकर कहना, अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाता है।
दलित लेखकों के उपन्यासों की भाषा अक्सर उन समुदायों की बोली पर आधारित होती है, जहाँ दलित लोग रहते हैं। उमराव सिंह जाटव का उपन्यास 'थमेगा नहीं विद्रोह' इसका उदाहरण है। यह उपन्यास दरियापुर से दादरी और दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों में सेट है। इसमें कई कहानियाँ हैं, जो विभिन्न पात्रों द्वारा सुनाई जाती हैं। दरियापुर गाँव इस उपन्यास में मुख्य स्थान पर है, जैसे कमलेश्वर के 'कितने पाकिस्तान' में 'समय' और 'काशी का अस्सी' में अस्सी घाट।
उपन्यास की भाषा सराहनीय है। कथा का क्षेत्र दरियापुर से दादरी और दिल्ली तक फैला है, और इसमें इस क्षेत्र की बोलियाँ और शब्दों का खूब उपयोग किया गया है। देशज शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। कथानक के अनुसार भाषा और शब्दों का चयन भी किया गया है। नए शब्दों का भी समावेश किया गया है। दरियापुर की 'खाला' और 'हमीद'

© 2025 Usha Kumari, Dr. Ankit Narwal. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

की बोलियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। लोकगाथाओं के आधार पर भाषा को विशेष रूप देने से उपन्यास में गहराई आई है। सत्य प्रकाश का उपन्यास 'जस्स भाई सेवर' भाषा की दृष्टि से सरल और समझने में आसान है।

डॉ. अम्बेडकर का कहावत "संघर्ष करो" उपन्यास में मंगल नाम के पात्र के माध्यम से दिखता है। मंगल सवर्णों के खिलाफ खड़ा होता है और दलित समाज को बताता है कि एकजुट होकर लड़ा जाए तो कठिनाइयाँ भी आसान हो सकती हैं। मोहनदास नैमिशराय का उपन्यास "आज बाजार बंद है" एक ऐसे उत्पीड़ित वर्ग पर केंद्रित है, जिस पर समाज का ध्यान बहुत कम जाता है। यह उपन्यास वेश्याओं के संघर्ष, उनकी दुख-तकलीफ और मजबूरियों को दर्शाता है। कहानी के लिहाज से यह उपन्यास सफल और चर्चित है, लेकिन इसकी औपन्यासिक प्रामाणिकता कमजोर है। इसमें सवाल उठता है कि सौंदर्यशास्त्र क्या है। हालांकि, दलित साहित्य के दृष्टिकोण से यह महत्वपूर्ण है।

साम्प्रदायिकता का मुद्दा भारत में बहुत पुराना है, जिस पर पहले के अध्याय में विस्तार से चर्चा की गई है। जब दो अलग-अलग समुदाय अपने व्यक्तिगत और सामुदायिक मुद्दों पर गलत बयान देने लगते हैं, तो साम्प्रदायिकता का जन्म होता है। अनेक इतिहासकारों ने साम्प्रदायिकता के मुद्दे पर अपने विचार दिए हैं। यहां शोध के तहत हिंदी साहित्य में उपन्यासों में साम्प्रदायिकता की स्थिति और कहानी की भाषा का अध्ययन किया गया है।

किसी उपन्यास में मुस्लिम या हिंदू समाज का चित्रण करना ही उसे साम्प्रदायिक पृष्ठभूमि पर आधारित नहीं बनाता। हाल के समय में, लोग हिंदू-मुस्लिम संबंधों को एक विशेष समुदाय के नजरिए से देखने लगे हैं, खासकर विभाजन के बाद के उपन्यासों में यह स्पष्ट है। स्वतंत्रता के बाद, देवेन्द्र सत्यार्थी का नाम पहले आता है, जिन्होंने साम्प्रदायिक दंगों की स्थिति को अपने उपन्यास "कठपुतली" (1954) में दर्शाया है। अगर साम्प्रदायिकता की दृष्टि से देखें, तो यह कहा जा सकता है कि आजादी से पहले और बाद दोनों में स्थिति ठीक नहीं रही और अब तो यह और खराब हो चुकी है। इन हालात को हिंदी उपन्यासकारों ने अपने-अपने लेखन में दर्शाया है। कुछ लेखकों ने आजादी से पहले की घटनाओं के आधार पर उपन्यास लिखे हैं, जबकि अन्य ने आजादी के बाद के दंगों और साम्प्रदायिक हिंसा को आधार बनाया है।

भारत में साम्प्रदायिकता की भावना के कारण भाषा के आधार पर भी विभाजन होता रहा है। प्राचीन काल से उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की भाषाएं अलग थीं। मध्यकाल में भी शासक की भाषा ही शासन की भाषा मानी जाती थी। आधुनिक काल में भी यह देखा जा सकता है। लेकिन इस शोध में सवाल यह है कि साम्प्रदायिक विषयों पर केंद्रित उपन्यासों की भाषा क्या होती है। किसी उपन्यास की कहानी में उपयोग की गई भाषा उस समुदाय की संस्कृति को बताती है। यह भाषा वर्गीय समुदाय की गतिविधियों और घटनाओं को समझने में मदद करती है। भाषा व्यक्तियों और समुदायों की अभिव्यक्ति का एक साधन है।

भाषा किसी व्यक्ति, समुदाय या वर्ग की अभिव्यक्ति का तरीका है। यह सरल और जटिल दोनों हो सकती है, जो लेखक के शब्दों के चयन पर निर्भर करती है। लेखक अपनी रचना के लिए किस तरह के शब्दों का उपयोग करता है, वह उसकी कहानी को कैसे व्यक्त करता है, यह महत्वपूर्ण है। इस उप-अध्याय का उद्देश्य साम्प्रदायिकता के संदर्भ में कथा-भाषा का अध्ययन करना है।

निष्कर्ष

आजकल कई उपन्यास इस बात पर ध्यान नहीं दे रहे कि किस शब्द का उपयोग कहाँ करना चाहिए। यदि लेखक को हिंदी शब्द चुनने में समस्या हो रही है, तो वह बिना सोचे-समझे अंग्रेजी के शब्द डाल रहा है, जिससे रचना भारी हो जाती है। लेखक केवल रचना को पूरा करने पर ध्यान दे रहा है। अज़ेय इस मुद्दे को उठाते हैं कि आज के समाज में हम भाषा की प्रदूषण की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। हम अक्सर इस बात पर ध्यान नहीं देते कि शब्दों की ताकत कैसे काम करती है। जब हम भाषा के जरिए अपने विचारों को साझा करते हैं, तब हम केवल अपनी सोच को नहीं बल्कि अपने आप को भी सशक्त बनाते हैं। हमारी विचारधारा अधिक स्पष्ट और गहरी होती जाती है। अगर हम एक भाषा में खुलकर बात नहीं कर पाते, तो दो या तीन भाषाओं में भी चुप रहना कोई उपलब्धि नहीं है।

जैसे दलित विमर्श ने समाज में बदलाव लाया है, वैसे ही महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में सुधार ने उनके अनुभवों को कई तरीकों से व्यक्त किया है। आत्मकथा और आत्मकथात्मक उपन्यास इसके महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। पिछले दो-तीन दशकों में हिन्दी साहित्य में ऐसे उपन्यास लिखे गए हैं, जो हाशिए पर जी रहे लोगों की मुश्किलों का चित्रण करते हैं। इन उपन्यासों में भाषा की लोकप्रियता से ज्यादा, समझने की क्षमता पर जोर दिया जाता है। असल में, किसी भी विषय या परिस्थिति के अनुसार भाषा को बदलकर उसे लोकप्रिय बनाया जा सकता है। उपन्यास की भाषा की स्पष्टता और पाठक का उससे जुड़ाव ही उसकी लोकप्रियता को निर्धारित करता है।

सन्दर्भ सूची

1. सिंह विजय बहादुर. *ऐतिहासिक शोकगीत और उपन्यास सात आसमान.* उपन्यास: समय और संवेदना. वाणी प्रकाशन, दिल्ली; 2007. पृ.160.
2. एहतेशाम मंज़ूर. *बशारत मंज़िल.* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; 2004. पृ.136.
3. खेतान प्रभा. *दो उपन्यास और नारी का आत्म संघर्ष.* हंस. सम्पा. राजेन्द्र यादव. जून 1994. पृ.64.
4. मिल जॉन स्टुअर्ट. *स्त्रियों की पराधीनता.* अनुवाद: प्रगति सक्सेना. राजकमल विश्व क्लासिक प्रकाशन, दिल्ली; 2002. पृ.56.
5. सिंह बच्चन. *स्त्रीवादी समीक्षा.* आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द. वाणी प्रकाशन, दिल्ली; 2012. पृ.150.
6. लिम्बाले शरण कुमार. *दलित साहित्य के विषय में.* दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र. अनुवाद: रमणिका गुप्ता. वाणी प्रकाशन, दिल्ली; 2000. पृ.31.
7. लिम्बाले शरण कुमार, वाल्मीकि ओमप्रकाश. *संवाद: हमें दया नहीं अधिकार चाहिए.* दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र. अनुवाद: रमणिका गुप्ता. वाणी प्रकाशन, दिल्ली; 2000. पृ.131.

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

© 2025 Usha Kumari, Dr. Ankit Narwal. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

© 2025 Usha Kumari, Dr. Ankit Narwal. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/